वैशेषिक दर्शन में ईश्वर का स्वरूप

बलजीत यादव
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
स्नातकोत्तर महाविद्यालय महेन्दगढ़
हरियाणा

महर्षि कणाद रचित वैशेषिक सूत्रों में ईश्वर का उल्लेख नहीं के बराबर हैं और इस कारण उनके निरीश्वरवादी होने की आशंका भी उपस्थित हो जाती है। यदि महर्षि कणाद ईश्वरवादी न होते तो प्रशस्तपाद एवं बाद के व्याख्याकारों द्वारा एकाएक विनातर्क वितर्क के ईश्वर की सत्ता न स्वीकार कर ली जाती। अत: कणाद के व्याख्याकार उन्हें ईश्वरवादी मानते है तथा अनेक सूत्रों जैसे-1/1 / 3, 2/1/18.-19,7/2/20 आदि की व्याख्या ईश्वर परक करते है। प्रशस्तपाद में तो सृष्टि संहार प्रकरण के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से ईश्वर के अतीत को स्वीकार किया गया । ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि और प्रलय होता है।

किसी भी वस्तु के निर्माण में दो प्रकार के कारणों की आवश्यकता होती है उपादान कारण और निमित्त कारण। विश्व का उपादान कारण चार प्रकार के परमाणुओं को माना जाता है तथा निमित्त कारण ईश्वर को कहा जाता है। ये चार प्रकार के परमाणु है- पृथ्वी - के परमाणु, जल के परमाणु, वायु के परमाणु और अग्नि परमाणु। परमाणुओं के संयुक्त होने से वस्तुओं की उत्पत्ति होती है तथा परमाणुओं का विच्छेद होने से वस्तुओं का विनाश होता है परमाणुओं के रायोजन पृथक्करण के लिए गति की आवश्यकता होती है. परन्तु परमाणु स्वयं निष्किय और गतिहीन है अतः उनको गति देने वाला कोई बाहरी कारण होना चाहिए और वह कारण है- ईश्वर।

प्रशस्तपाद के अनुसार ब्रह्मा के मान से 100 वर्ष बीत जाने पर ब्रह्मा के अपवर्ग के समय संसार में बार बार शरीरादि धारण से भिन्न जीवों को रात में विश्वाम देने के लिए, अर्थात कुछ समय तक उक्त दुःखों से उन्हें छुटकारा देने लिए "सफलभुवनपति" महेश्वर की संजिहीर्षा अर्थात् नाश करने की इच्छा होती है और इस प्रकार ईश्वर की इच्छा से प्रलय की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, जिसमें सृष्टि की समस्त मुख्य और स्थूल वस्तुओं का आणविक विघटन होने लगता है। सारी राष्ट्र विधघटित होकर अणुओं में परिवर्तित हो जाती है। परमाणु शाश्वत होते है, इनकी न सृष्टि होती है, न नाश होता है। कार्य द्रव्यों का परमाणु पर्यन्त विनाश हो जाने के पश्चात उतने ही समय तक । ब्रह्मा के मान से 100 वर्ष पर्यन्त अपने में असम्बद्ध परमाणु एवं धर्म-अधर्म और संस्कार से युक्त जीव ही रह जाते है।

इस प्रकार संहार के पश्चात पुनः प्राणियों के कर्मफल रूप सुख दुःख का अनुभव करवाने के लिए महेश्वर की सृष्टि करने की इच्छा होती है। इसके बाद सभी जीवों के सभी अदृष्टों में कार्यों को उत्पन्न करने की क्षमता आ जाती है। कार्य में उन्मुख हुए अदृष्ट एवं आत्मा और परमाणु के संयोग से वायु के परमाणुओं में किया उत्पन्न होती है। इस प्रकार परमाणुओं में फिर सहयोग की उत्पत्ति होती है। इन संयोगों से द्वयणुक की उत्पत्ति होती है, उसके बाद त्रसरेणु की।

इस कम से गहान वाय उत्पन्न होकर किसी से बाधित न होने के कारण अत्यन्त वेग से युक्त होकर रहता है। इस प्रकार द्वयणुकादि कम से चारों महाभूतों के उत्पन्न हो जाने पर केवल महेश्वर के संकल्प से ही पार्थिव परमाणुओं की सहायता से तैजस रमाणुओं से महान पिण्ड की उत्पत्ति होती है उसी तैजस पिण्ड में कमल के समान चार मुखवाले "सर्वलोकपितामह" अर्थात् सभी पुरूषों के आदि पुरुष ब्रह्मा को सकल पवनों के साथ उत्पन्न कर, उसे प्रजाओं को उत्पन्न करने के लिए नियुक्त करते है। महेश्वर के द्वारा सृष्टिकार्य के लिए नियुक्त वह ब्रह्मा "अतिशयज्ञानवैराग्यैश्वर्यसम्पन्नः" होता है। अपने उत्तम ज्ञान के बल से वह प्राणियों के धर्म और अधर्म को ठीक से समझते हैं तथा उत्कट वैराग्य से सम्पन्न होने के कारण उनकी प्रवृत्ति पक्षपात से दूषित नहीं होती है अपने अमित ऐश्वर्य के बल से वह प्राणियों के कर्म का भोग सम्पन्न करा सकते है। जिस जीव का अदृष्ट जिस प्रकार का है, उसी के अनुरूप धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य इन चारों वस्तुओं से जीवों की उचित रीति से सम्बद्ध करते हैं, इसमें थोड़ा सा भी इधर- उधर नही करतें।

अब यह प्रश्न पैदा होता है कि महेश्वर सृष्टि की रचना क्यों करते हैं? सृष्टि कार्य में महेश्वर की प्रवृत्ति अपने लिए नहीं है क्योंकि प्रवृत्ति इष्ट वस्तुओं की प्राप्ति एवं अनिष्ट वस्तुओं के परिहार रूप भेदों से दो ही प्रकार की है। महेश्वर को सभी वस्तुएं सदा प्राप्त है, अतः संसार रचना की उनकी प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती। यदि यह माने कि वे करूणा से इसमें प्रवृत्त होते हैं तो भी उचित नहीं क्योंकि ऐसा मानने पर वे सुखमयी सृष्टि की ही रचना करते, दुःखबहुल सृष्टि की नहीं। इस आक्षेप का परिहार प्राणिनां कर्मविपार्क विदित्वा' इस वाक्य से किया गया है।" अर्थात ईश्वर जीवों को उनके कर्मों के अनुसार फल देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि दूसरों के लिए प्रवृत्त होने पर भी केवल सुखमयी सृष्टि नही कर सकते, क्योंकि सुख और दुःख दोनों के जनक विचित्र कर्माशय के द्वारा ही उनमें सृष्टि का कर्तृत्व है ऐसा होने पर भी उनकी स्वाभाविक करूणा में कोई अन्तर नही आता।

एस0एन0 दास गुप्ता ने भी इसी मत की पुष्टि की है- जिस प्रकार एक स्वामी अच्छे और बुरे कर्मों के लिए पारितोषिक एवं दण्ड का विधान बनाता है उसी प्रकार ईश्वर भी मनुष्य के धर्म और अधर्म के अनुसार ही सुख- दुःख आदि भोगों की व्यवस्था करता है।सृष्टि रचना में अदृष्ट ही नवीन उत्पत्ति में सहायक होता है, और प्रलयकाल में ईश्वरेच्छा से यहां अदृष्ट निष्किय स्थिति में रहता है। उस ईश्वर की महान इच्छा पर ही सारी सृष्टि का कम निर्भर है।

ईश्वर जीवन के सुख- दुख के लिए उनके धर्म और अधर्म के अनुसार ही परमाणुओं की सहायता से पुष्टि करता है। अतः सृष्टि का उपादान कारण तो परमाणु काहजा कि ईश्वर के समान नित्य है और निमित्त कारण ईश्वर को माना गया हा परन्तु निमित्त कारण में भी ईश्वर पूर्ण स्वतन्त्र नहीं है। उसे सृष्टि कार्य लिए जीवों के धर्म और अधर्म रूप अदृष्ट की अपेक्षा रहती है। इस प्रकार

वैशेषिकों का ईश्वर भी निरंकुश नहीं है, उस पर सदा अदृष्ट का अंश रहता है इस प्रकार ईश्वर का सृष्टि काय के प्रति स्वातन्त्रय रूप कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता जिससे उसमें अनीश्वरत्व का दोष आ जाता है।

न्यायकन्दलीकार श्रीधर भट ने इस आक्षेप का भी समाधान किया है। जिस प्रकार योग्यता के अनुसार अपने भृत्यों को फल देते हुए भी स्वामी अप्रभु नहीं होते, उसी प्रकार सभी जीवों को अपने कर्म के अनुसार फल देते हुए भी ईश्वर अनीश्वर नहीं होते अब यह प्रश्न उठता है कि ईश्वर की सत्ता में प्रमाण ही क्या है? अनुमान प्रमाण से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध किया है। पृथ्वी आदि चारों महाभूत किसी ज्ञानी कर्ता के द्वारा उत्पन्न होते हैं, क्योंकि वे कार्य हैं कार्य अवश्य ही किसी ज्ञानी कर्ता द्वारा निष्पन्न होता है जैसे घटादि अतः पृथिव्यादि चारों भूत भी कार्य होने से अवश्य ही ज्ञानी कुत्ता ईश्वर द्वारा उत्पन्न है। सभी विषयों का ज्ञान जीवन को नहीं है।

सभी विषयों के ज्ञान के बिना सृष्टि जैसा कार्य सम्भव नहीं है। सृष्टि रचना के लिए जीवों से भिन्न सहजज्ञान से युक्त कतत्वस्वभाव वाले किसी अधिष्ठाता की कल्पना करनी होगी, क्योंकि जड़ वस्तुओं की प्रवृत्ति चेतन अधिष्ठाता के बिना संभव ही नहीं है अतः ईश्वर- रूप अधिष्ठाता की पुष्टि होती है। इस प्रकार श्रीधर भट्ट ने अनुमान तथा शब्द प्रमाणों के द्वारा भी ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध किया है। उसके स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है।

न्यायकन्दली में "ईश्वर एक ही है " इस तथ्य की स्थापना की गई है क्योंकि यदि ईश्वर अनेक हों और सभी सर्वज्ञ हों तो फिर हम लोगों की तरह सृष्टि कार्य में असमर्थ होगें अथवा सृष्टि की उत्पत्ति तो एक ही ईश्वर के सामर्थ्य से हो जाएगी, अन्य सभी ईश्वरों के सामर्थ्य व्यर्थ हो जाएंगे। अतः ईश्वर एक ही है।"

श्रीधर भट्ट ने यह भी स्पष्ट किया है कि ईश्वर सर्वज् है अत: मिथ्याज्ञान भी उसमें नहीं है। मिथ्याज्ञानमूलक राग और द्वेष भी उसमें नहीं है। राग-द्वेष से उत्पन्न होने वाली प्रवृत्तियों, प्रवृत्तियों से उत्पन्न धर्म-अधर्म से उत्पन्न सुख-दुःख का भी ईश्वर में अभाव है। सर्वदा सभी विषयों का अनुभव रहने के कारण स्मृति और संस्कार भी नहीं है।" इच्छा और प्रयत्न को छोड़कर परमेश्वर को संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग एवं ज्ञान इन छ: गुणों से युक्त माना है।

अब यह शंका उठती है कि "स किं बुद्धो मुक्तो दा" ? बद्ध तो वे नहीं है क्योंकि बन्धन के कारण क्लेश-कर्मादि उसमें नहीं है। वे मुक्त भी नहीं हो सकते क्योंकि " गक्ति" और "बन्धविच्छेद" दोनों शब्द पर्यायवाची है। नित्यमुक्त वे हो सकते हैं। जैसा कि भगवान पंतजली ने क्लेशकर्मविपाकाशर्यः" इत्यादि सूत्र से कहा है, जिसका विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में किया जाएगा।

---

1 प्रशस्पाद भाष्य पृ0 29-34

2. 360 अहोरात्रों से उनका एक वर्ष. 12000 वर्षों का एक चतुर्युग 1000 चतुर्युग से ब्रह्मा का एक दिन, उतने ही समय की एक रात, फिर एक वर्ष, इसी वर्ष से 100 वर्ष की आयु ब्रह्मा की मानी गई है। न्या०कन्द0पृ0124

3.निशि विश्रामार्थ कियत्कालं दुःखोपशमार्धम् सफलभुवनपतेः संहारेच्छा भवति। न्या0क0.पृ0 124

4.ततः प्रदिभक्ता परमाणवोवतिष्ठन्ते धर्माधर्मसंस्कारानविद्वा आत्मानस्तावन्तमेवकालम् । प्रश०भा०, पृ० 30

5.तेषां सुखदुःखानुभवोत्पत्तये महेश्वरस्य सर्जनेच्छा जायते। तदन्तरं सर्वेष्वात्मस गता अदृष्टा वृत्तिं लभन्ते। न्या0क0पृ0 127

6.एवं कर्मोत्पत्तौ पवनपरमाणूनां परस्परसंयोगा जायन्ते। तत्संयोगेभ्यश्य
द्वयणुकान्युत्पधन्ते.....वेगातिशययुक्तस्तिष्ठति। न्या0क0पू0 127

7.तस्मिंचतुवर्दनकमलं सर्वलोकपितामहं ब्रह्माणं सफलभवनसहितमुत्पाय प्रजासगे विनियुड़ क्ते। प्रश० भा0, पृ० 34

8.ज्ञानातिशयात् प्राणिनां धर्माधर्गों यथावत् प्रत्येति। वैराग्यान्न पक्षपातेन प्रवर्त्तते,ऐश्वर्यात् कर्मफलं भोजयति। न्या0क0 130-319

9. यस्य यथाविधं कर्म तत्तदनरूपेण ज्ञानादिना सम्यग योजयति मात्रयाऽयन्यथा न करोति । वही पृ0 131

.

10. परार्था सिसृक्षायां प्रवृत्तिर्न स्वाथनिबन्धनेत्यभिप्रायः । न्या0क0पू0 132

11. नन्वेवं तर्हि सुखमयीमेव सष्टिं कर्यान्न दुःखशबलां करूणाप्रवृत्तत्वादित्यत्रैष परिहारः प्राणिनां कर्मविपाकं विदित्वेति. वही- पृ0132

12.एस०एन०दास गुप्ता- भारतीय दर्शन का इतिहास, पृ0 336

13.स हि सर्वप्राणिनां कर्मानुरूपं फलं प्रयच्छन् कथमनीश्वरः स्यादिति भावः न हि योग्यतानुरूप्येण भृत्यानां फलविशेषप्रदः प्रभुरप्रभुर्भवति। न्या०क0पृ0 132

14. महाभूत चतुष्टयमुपलब्धिमत्पूर्वकं कार्यत्वाद् यत्कार्य तदुपलब्धिमत्पूर्वकं यथा घटः। न्या0क0पृ० 132

15. चेतनमधिष्टातारमन्तरेणाचेतनानां प्रवृत्त्यभावात् न्या०क०पृ० 140

16. किं पुनरीश्वरसद्भावे प्रमाणम्? आगमस्तावदनुमानवं न्या0क0पृ0 133

17. बहूनामसर्वज्ञत्वेडस्मदादिवदसामर्थ्यात, सर्वज्ञत्वे त्वेकस्यैव सामर्थ्यादपरेषामनुपयोगात् ।न्या0क0पृ0 141

18. अतो न तन्निवन्धनं निथ्याज्ञानम्, मिथ्याज्ञानाभावे च न तन्मूलौ रागद्वेषी. सुखदुःखयोरभावः । -वही- पृ0 142
19. सर्वदेव चानुभवसभावात् स्मृतिसंस्कारावपि नासते। वही -40 142

20. इच्छाप्रयत्ननावप्यनड़ गीकुर्वाणा षडगुणाधिकरणोडमित्याहुः ।न्या0क०पृ० 142

21. न तावद बदः, बन्धनसमा ज्ञातस्य बन्धहेतोः क्लेशादेरसम्भवात्। मुक्तोडपि नभवति, बन्धनविच्छेदपर्यायत्वान्मुक्तेः। नित्यमुक्तस्तृ स्यात्। वही- पृ0 142